

## वीर रस के आलोक में राम का नायकत्व: रामचरितमानस का एक आलोचनात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन

दयाशंकर, प्रो. दिग्विजय कुमार शर्मा

शोधार्थी, संस्कृति विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

प्रोफेसर, संस्कृति विश्वविद्यालय, मथुरा (उत्तर प्रदेश)

Email : [opjsd925@gmail.com](mailto:opjsd925@gmail.com)

**सारांश:** प्रस्तुत शोध-प्रबंध “वीर रस के आलोक में राम का नायकत्व: रामचरितमानस का एक आलोचनात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन” रामचरितमानस में राम के नायकत्व की बहुआयामी संरचना का रस-सिद्धांत और सांस्कृतिक अध्ययन की संयुक्त दृष्टि से विश्लेषण करता है। इसमें यह प्रतिपादित किया गया है कि राम का नायकत्व केवल युद्ध-पराक्रम तक सीमित नहीं, बल्कि धर्म-पालन, वचन-निष्ठा, करुणा, त्याग और लोकमर्यादा की स्थापना जैसे नैतिक आयामों से निर्मित होता है। वीर रस के स्थायी भाव ‘उत्साह’ को केंद्र में रखते हुए अध्ययन यह दर्शाता है कि राम में युद्धवीर, दयावीर और धर्मवीर—तीनों रूप अंतर्गुम्फित हैं, जिससे उनका चरित्र बहुरसीय स्वरूप ग्रहण करता है; साथ ही करुण और शान्त रस भी उनके नायकत्व को संतुलित और मानवीय बनाते हैं। शोध में रस-सिद्धांत आधारित पाठ-विश्लेषण, पूर्ववर्ती आलोचनात्मक परंपरा और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य (लोकपरंपरा, रामलीला, राष्ट्रीय चेतना) को समन्वित करते हुए यह स्थापित किया गया है कि राम भारतीय समाज में केवल धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि आदर्श लोकनायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इस प्रकार निष्कर्षतः यह अध्ययन प्रतिपादित करता है कि रामचरितमानस में वीर रस की प्रमुखता के बावजूद राम का नायकत्व बहुआयामी, नैतिक-सांस्कृतिक रूप से सक्रिय और भारतीय सांस्कृतिक चेतना का स्थायी आदर्श है।

१. **प्रस्तावना:** प्रस्तुत शोध-विषय “वीर रस के आलोक में राम का नायकत्व: रामचरितमानस का एक आलोचनात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन” समकालीन साहित्य-चर्चा और सांस्कृतिक विमर्श में इसलिए विशेष प्रासंगिक है कि “नायक” की संकल्पना आज केवल युद्ध-कौशल या शौर्य-प्रदर्शन तक सीमित नहीं रही; वह नैतिक नेतृत्व, लोककल्याण, कर्तव्य-निर्वाह, तथा सामाजिक मर्यादा-स्थापना जैसी बहुस्तरीय भूमिकाओं से जुड़ गई है। रामचरितमानस में राम का नायकत्व इसी बहुआयामिता के साथ उभरता है—जहाँ उनका पराक्रम रणभूमि में जितना अर्थवान है, उतना ही अर्थवान वचन-पालन, त्याग, धैर्य और नीति-निर्णय में भी है। इस नायकत्व की रस-आधारभूमि को समझने के लिए भारतीय काव्यशास्त्र में वीर रस की परंपरा निर्णायक संदर्भ प्रस्तुत करती है, क्योंकि वीर रस का स्थायी भाव “उत्साह” माना गया है—वह ऊर्जा जो व्यक्ति को धर्म-रक्षा, अन्याय-निवारण और

लोकहित के लिए सक्रिय करती है।<sup>1</sup> अतः यह प्रस्तावना इस बिंदु को रेखांकित करती है कि राम का नायकत्व *मानस* में केवल घटनात्मक वीरता नहीं, बल्कि “उत्साह” के नैतिक-सांस्कृतिक रूपांतरणों का समुच्चय है, जिसे आलोचनात्मक पाठ-विश्लेषण के माध्यम से उद्घाटित किया जा सकता है।

तुलसीदास का *रामचरितमानस* भारतीय समाज की सांस्कृतिक चेतना में केवल एक काव्य-ग्रंथ या धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि लोक-आस्था, आचार-विचार, भाषा-प्रवाह और सामुदायिक स्मृति का जीवंत सांस्कृतिक पाठ है—इसी अर्थ में उसे “विमल संजीवन धारा” कहा गया है, जो पीढ़ियों तक मूल्यबोध और आदर्श-निर्माण का स्रोत बनी रही।<sup>2</sup> इस अध्ययन का उद्देश्य वीर रस के आलोक में राम के नायकत्व की संरचना, उसके काव्यात्मक उपकरणों, तथा उसके सांस्कृतिक प्रभाव-क्षेत्र का आलोचनात्मक विश्लेषण करना है; केंद्रीय समस्या यह होगी कि *रामचरितमानस* में राम का नायकत्व किस हद तक वीर रस की केन्द्रीयता से संचालित है, और किस हद तक अन्य रस-प्रवृत्तियाँ (जैसे करुण/शांत) उसके आदर्श-चरित्र को संतुलित बनाती हैं। पद्धति के रूप में (i) रस-सिद्धांत आधारित सूक्ष्म-पाठ (ii) तुलसी-काव्य पर स्थापित आलोचनात्मक परंपरा का संदर्भ-विश्लेषण, तथा (iii) सांस्कृतिक अध्ययन दृष्टि (लोक-परंपरा, सामाजिक ग्रहण, प्रदर्शन-परंपराएँ) को संयुक्त रूप से अपनाया जाएगा, ताकि राम के नायकत्व को साहित्यिक-रसात्मक स्तर और सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर—दोनों पर समग्र रूप में समझा जा सके; इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की ऐतिहासिक-आलोचनात्मक दृष्टि *मानस* और तुलसीदास की लोक-सांस्कृतिक प्रतिष्ठा को समझने में सहायक आधार प्रदान करती है।<sup>3</sup>

सिंह, अजयप्रताप (२०१५) अपने अध्ययन में तुलसीदास के नायक-आदर्श को केंद्र में रखकर यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि *रामचरितमानस* में नायकत्व केवल कथानायक की भूमिका नहीं, बल्कि एक सांस्कृतिक मॉडल है जो समाज के नैतिक बोध, आचरण-संहिताओं और सामूहिक स्मृति को दिशा देता है। लेख का जोर इस बात पर है कि तुलसी का नायक-आदर्श लोक की अपेक्षाओं, धर्म-नीति और समय-संदर्भों के साथ संवाद करते हुए “आदर्श” का रूप लेता है; इसलिए उसके प्रभाव को साहित्यिक सीमाओं के बाहर सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहार में भी पढ़ा जा सकता है। यादव, शशिभूषण (२०१६) दयावीर और धर्मवीर जैसे अवधारणात्मक आलोक में राम-चरित्र का पाठ प्रस्तुत करते हैं। इस दृष्टि में वीरता का अर्थ केवल युद्ध-कौशल नहीं रह जाता, बल्कि करुणा, संरक्षण, न्याय और धर्म-पालन जैसे नैतिक गुणों के साथ जुड़कर “वीर” की व्यापक परिभाषा बनाता है। लेख का निहितार्थ यह है कि राम का चरित्र ऐसी धर्मवीरता रचता है जो शक्ति के प्रदर्शन से अधिक लोककल्याण और मर्यादा-संरक्षण की तर्क-भूमि पर टिकती है, और यही वीरता *मानस* के नायकत्व को नैतिक वैधता प्रदान करती है। गुप्ता, दिनेशचन्द्र (२०१६) उपनिवेशोत्तर अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में *रामचरितमानस* को पढ़ते हुए पाठक को यह संकेत देते हैं कि “*मानस*” केवल भक्ति-ग्रंथ नहीं, बल्कि सांस्कृतिक सत्ता, पहचान-निर्माण और विमर्श-राजनीति से भी जुड़ा हुआ पाठ है। इस फ्रेम में रामकथा को स्थानीय ज्ञान-परंपराओं, औपनिवेशिक आधुनिकता, और राष्ट्र/समुदाय की

<sup>1</sup> भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, (वीर रस-प्रकरण: “वीर रस का स्थायी भाव उत्साह है”), सम्पादित संस्करण: काशीनाथ पाण्डुरंग परब (सम्पा.), निर्णयसागर प्रेस, मुंबई।

<sup>2</sup> गोस्वामी तुलसीदास, *रामचरितमानस*, (भूमिका/मंगलाचरण-परंपरा में उद्धृत भाव: “रामचरितमानस विमल संजीवन धारा”), सम्पादित संस्करण: हनुमान प्रसाद पोद्दार (सम्पा.), गीताप्रेस, गोरखपुर।

<sup>3</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी (वाराणसी)।

कल्पनाओं के बीच एक जीवंत संवाद के रूप में देखा जाता है। लेख का महत्व यह है कि वह मानस-पाठ को समकालीन सिद्धांत-भाषा से जोड़ते हुए उसके अर्थ-क्षेत्र को विस्तारित करता है और यह प्रश्न उठाता है कि परंपरा की प्रतिष्ठा किन सांस्कृतिक प्रक्रियाओं से निर्मित/पुनर्निर्मित होती है। पाण्डेय, हरिनारायण (२०१७) नाट्यशास्त्र की सैद्धांतिक परंपरा के आधार पर वीर रस का विवेचन प्रस्तुत करते हैं और बताते हैं कि रस की संरचना, विभाव-अनुभाव-व्यभिचारीभाव आदि के संदर्भ में “वीर” का सौंदर्यशास्त्र कैसे बनता है। इस तरह का अध्ययन मानस जैसे महाकाव्यात्मक/भक्तिकाव्य पाठों में वीर रस की पहचान और उसके कार्य को समझने के लिए आधार-भूमि देता है। लेख की उपयोगिता यह है कि वह वीर रस को भाव-उत्पत्ति की व्यवस्था, पाठ-गठन और पाठक-अनुभूति के स्तर पर देखने का उपकरण प्रदान करता है, जिससे बाद के मानस-केंद्रित रस-अध्ययनों को स्पष्ट सैद्धांतिक सहारा मिलता है। शुक्ल, ममता (२०१७) राम के “मर्यादा पुरुषोत्तम” स्वरूप का आलोचनात्मक परीक्षण करते हुए उस आदर्श-प्रतिमा की निर्मिति-प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित करती हैं जिसके सहारे रामचरित्र सामाजिक नैतिकता का मानक बनता है। यह दृष्टि राम को केवल गुणों का समुच्चय न मानकर, एक ऐसे मानक-चरित्र के रूप में पढ़ती है जो अनुशासन, संयम, उत्तरदायित्व और संबंध-धर्म की कसौटी पर निरंतर परखा जाता है। लेख का संकेत यह भी है कि मर्यादा की संकल्पना नायकत्व की केंद्रीय धुरी है; इसी से राम का आचरण लोक-स्वीकृति प्राप्त करता है और कथा का नैतिक तनाव भी निर्मित होता है। दुबे, कमलेश (२०१८) रामलीला परंपरा के माध्यम से “लोकनायक राम” की अवधारणा को समझते हैं। रामकथा का लोक-नाट्य रूप केवल प्रदर्शन-परंपरा नहीं, बल्कि सामुदायिक सहभागिता, सांस्कृतिक शिक्षा और मूल्य-संचरण की प्रक्रिया भी है; इसीलिए रामलीला में राम का रूप जनता के अनुभव-जगत के करीब आता है। लेख की दिशा यह बताती है कि लोक-परंपराएँ नायकत्व को मूर्त और सुलभ बनाती हैं—यहाँ राम का आदर्श व्यवहार, संघर्ष और विजय सामूहिक उत्सव के रूप में जीवन-मूल्यों से जुड़ जाता है, जिससे “लोकनायकत्व” की सामाजिक जड़ें मजबूत होती हैं। शर्मा, रामकुमार (२०१८) रामचरितमानस में वीर रस की संरचना और नायकत्व के विमर्श को एक साथ रखकर देखते हैं। इस प्रकार का अध्ययन यह समझने में मदद करता है कि वीर रस केवल भाव-आस्वाद नहीं, बल्कि कथा-गति, चरित्र-निर्माण और मूल्य-प्रतिष्ठापन का माध्यम भी है। लेख यह संकेत देता है कि मानस में नायकत्व की स्थापना केवल युद्ध प्रसंगों से नहीं होती; वह नीति, धैर्य, नेतृत्व, और धर्म-निर्णय की स्थितियों में भी घटित होती है। इसलिए वीर रस की संरचना को पढ़ना नायकत्व की वैचारिक बनावट को पढ़ने के समान हो जाता है। भारद्वाज, रेखा (२०१९) स्त्रीवादी दृष्टि से रामकथा का पुनर्पाठ प्रस्तुत करती हैं। इस नजरिए में रामकथा के पात्रों, संबंधों और सत्ता-संरचनाओं का मूल्यांकन स्त्री-अनुभव, एजेंसी और प्रतिनिधित्व के प्रश्नों से किया जाता है। लेख का महत्व यह है कि वह पारंपरिक पाठ-आदतों को चुनौती देकर पाठक को यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि कथा के नैतिक निर्णयों, आदर्शों और सामाजिक नियमों का असर स्त्री-पात्रों पर कैसे पड़ता है। इस पुनर्पाठ से रामकथा की बहुस्तरीयता सामने आती है और विमर्श-क्षेत्र अधिक समावेशी बनता है। मिश्रा, देवेन्द्रनाथ (२०१९) तुलसीकाव्य में “धर्मवीरता” की अवधारणा पर विचार करते हैं। यहाँ वीरता का केंद्र धर्म है—अर्थात् वीरता का मूल्यांकन उद्देश्य, साधन और परिणाम की नैतिकता से जुड़ता है। लेख यह दिशा देता है कि तुलसी के यहाँ धर्मवीरता केवल रणभूमि की शौर्य-भाषा नहीं, बल्कि कर्तव्यपालन, लोकहित और मर्यादा-रक्षण का नैतिक संकल्प है। इस समझ से मानस में वीर रस की व्याख्या अधिक व्यापक हो जाती है, क्योंकि वह आचरण-धर्म और मूल्य-निष्ठा के साथ अर्थ ग्रहण

करती है। अवस्थी, संजय (२०२०) “रस-सिद्धांत और मानस का नायकत्व” के संदर्भ में यह रेखांकित करते हैं कि नायकत्व का अनुभव-लोक रस-व्यवस्था से गहराई से जुड़ा है। रस-सिद्धांत के आलोक में नायक का रूप केवल कथात्मक आवश्यकता नहीं, बल्कि सहृदय के भीतर एक विशिष्ट भाव-जगत और मूल्य-संवेदना जगाने वाली संरचना है। लेख की दिशा यह बनती है कि मानस में नायकत्व का सौंदर्यशास्त्र वीर, करुण, शांत आदि रस-स्थितियों के संतुलन से निर्मित हो सकता है; इसलिए नायकत्व को केवल “वीरता” के एकांगी खांचे में न बाँधकर रस-समग्रता में पढ़ना अधिक सार्थक है। त्रिपाठी, उर्मिला (२०२०) राम के लोकनायकत्व को सांस्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से देखती हैं। इस पद्धति में “लोकनायक” का अर्थ समाज की सांस्कृतिक ज़रूरतों, सामूहिक नैतिकता, परंपरा और पहचान के बीच निर्मित वह नेतृत्व-प्रतिमा है जो लोगों के जीवन में अर्थ और दिशा प्रदान करती है। लेख का संकेत यह है कि राम का लोकनायकत्व पाठ, परंपरा, लोकाचार और संस्थागत धार्मिक-सांस्कृतिक अभ्यासों के संयोग से बनता है। इस तरह मानस के अध्ययन में केवल पाठ-आंतरिक नहीं, बल्कि समाज-आंतरिक संदर्भ भी सक्रिय रूप से शामिल हो जाते हैं। वर्मा, सुधीर (२०२१) रामचरितमानस में “युद्धवीर राम” के रूप का अध्ययन करते हैं। यह विषय युद्ध प्रसंगों में नायक की भूमिका, नेतृत्व, रणनीति, धैर्य, और धर्म-निर्णय की कसौटी को सामने लाता है। लेख की दिशा यह समझने में मदद करती है कि युद्धवीरता का चित्रण केवल पराक्रम-गाथा नहीं, बल्कि न्याय, दायित्व और मर्यादा के अनुरूप शक्ति-प्रयोग का नैतिक विमर्श भी है। इस दृष्टि से युद्ध प्रसंग नायकत्व के निर्माण की प्रयोगशाला बन जाते हैं जहाँ शक्ति और धर्म का संतुलन बार-बार परिभाषित होता है। चतुर्वेदी, मालती (२०२२) रामकथा और भारतीय राष्ट्रीय चेतना के संबंध को केंद्र में रखती हैं। इस तरह का अध्ययन यह दिखाता है कि रामकथा की सांस्कृतिक उपस्थिति किस प्रकार सामूहिक पहचान, नैतिक आदर्शों और ऐतिहासिक स्मृति के साथ जुड़कर “राष्ट्रीय चेतना” की भाषा में रूपांतरित हो सकती है। लेख की दिशा यह भी संकेत देती है कि कथा-परंपरा के प्रतीक और मूल्य किस तरह व्यापक सामाजिक कल्पना में प्रवेश करते हैं, और विभिन्न कालों में अलग-अलग अर्थ ग्रहण करते हैं। इस प्रकार रामकथा का अध्ययन केवल धार्मिक-साहित्यिक न रहकर सामाजिक-ऐतिहासिक विमर्श में विस्तारित होता है। पांडेय, नीलम (२०२२) वीर रस के परिप्रेक्ष्य में तुलसी के काव्य-दर्शन को समझने का प्रयास करती हैं। यहाँ “काव्य-दर्शन” का अभिप्राय तुलसी की मूल्य-दृष्टि, जीवन-बोध और काव्य-उद्देश्य से है, जिसे वीर रस की दृष्टि से पढ़ने पर यह स्पष्ट होता है कि वीरता किन नैतिक मानकों से संचालित है। लेख यह संकेत देता है कि तुलसी के यहाँ वीर रस केवल उदात्त भाव नहीं, बल्कि धर्म-नीति, लोकमंगल और मर्यादा के साथ अंतर्गुम्फित एक व्यापक दृष्टि है। इससे वीर रस का अध्ययन, दर्शन-आधारित मूल्य-चिंतन की दिशा में आगे बढ़ता है। तिवारी, रजनीश (२०२३) रामचरितमानस में वीर रस की “बहुरसीय संरचना” पर ध्यान केंद्रित करते हैं। यह दृष्टि वीर रस को अकेला न मानकर, अन्य रसों के साथ उसकी सह-उपस्थिति और अंतर्संबंध को रेखांकित करती है—जिससे पाठ का भाव-विन्यास अधिक जटिल और गतिशील दिखाई देता है। लेख का महत्व यह है कि वह मानस के युद्ध/संघर्ष प्रसंगों को भी बहु-भावात्मक धरातल पर पढ़ने की संभावना खोलता है, जहाँ शौर्य के साथ करुणा, नीति, भक्ति, और शांत भाव-स्थितियाँ मिलकर नायकत्व के अनुभव को समग्र बनाती हैं।

## २. वीर रस : सिद्धांत और स्वरूप

**(क) भारतीय काव्यशास्त्र में वीर रस:** भारतीय काव्यशास्त्र में वीर रस का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह मानव-जीवन की उस उर्ध्वगामी ऊर्जा का रसात्मक रूप है जो संघर्ष, धर्म-रक्षा, कर्तव्य-पालन और लोकहित के लिए सक्रिय करती है। भरतमुनि ने *नाट्यशास्त्र* में रस-सिद्धांत की स्थापना करते हुए वीर रस की पहचान उसके स्थायी भाव “उत्साह” से की है—अर्थात् वह आंतरिक प्रेरक शक्ति जो व्यक्ति को साहस, धैर्य, तेज, पराक्रम और नैतिक दृढ़ता की दिशा में प्रवृत्त करती है।<sup>4</sup> वीर रस का “उत्साह” केवल रण-परिस्थितियों में तलवार उठाने तक सीमित नहीं होता; वह सत्य के पक्ष में खड़े होने, अन्याय का प्रतिरोध करने, कठिन निर्णय लेने, तथा संकट में भी मर्यादा निभाने जैसी अवस्थाओं में भी समान रूप से कार्य करता है। इसी कारण भारतीय काव्य-परंपरा में वीर रस के भीतर धर्मवीर, युद्धवीर, दयावीर, दानवीर आदि भेदों की अवधारणा विकसित हुई, जिनके केंद्र में एक ही मूल तत्व—उत्साह—विभिन्न सामाजिक-नैतिक संदर्भों में अलग-अलग रूप धारण करता है। वीर रस की यह व्यापकता उसे केवल “शौर्य” का रस न रहने देकर “कर्तव्य-निष्ठ वीरता” का रस बनाती है, और यही पक्ष साहित्यिक नायकत्व की संरचना को समझने में सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

रस-सिद्धांत की संरचना के अनुसार किसी भी रस का निष्पादन विभाव-अनुभाव-संचारी भाव के समन्वय से होता है। वीर रस के संदर्भ में *विभाव* वे कारण/स्थितियाँ हैं जो उत्साह को जाग्रत करती हैं—जैसे धर्म-संकट, अपमान, शत्रु-आक्रमण, अन्याय, राष्ट्र/समुदाय की रक्षा, प्रतिज्ञा या वचन-पालन आदि; इन विभावों में “आलम्बन” (नायक/नायिका, शत्रु, समाज) और “उद्दीपन” (रण-ध्वनि, शस्त्र-चमक, संकट-परिस्थिति, प्रेरक वाणी) दोनों आते हैं। *अनुभाव* वे बाह्य संकेत हैं जिनसे भीतर का उत्साह व्यक्त होता है—जैसे दृढ़ वाणी, स्थिर दृष्टि, तेजस्वी मुद्रा, निर्भय आगे बढ़ना, संकल्प-घोष, युद्ध/कार्य के लिए तत्परता आदि। *संचारी (व्यभिचारी) भाव* वे क्षणिक भाव हैं जो स्थायी भाव को सहारा देकर रस-परिपाक बढ़ाते हैं—जैसे गर्व, धृति, आवेश, स्मृति, हर्ष, मत्सर, शंका, उत्सुकता आदि; ये आते-जाते रहते हैं पर अंततः उत्साह के स्थायित्व को पुष्ट करते हैं।<sup>5</sup> इस प्रकार वीर रस की रस-प्रक्रिया केवल कथ्य (क्या हुआ) तक सीमित नहीं रहती, बल्कि काव्य में नायक की मनःस्थिति, नैतिक प्रेरणा, और क्रिया-परिणति—इन सबको एक सूत्र में बाँधकर “वीरता” को रसात्मक अनुभव में रूपांतरित करती है।

**(ख) वीर रस के भेद:** वीर रस का स्थायी भाव “उत्साह” है—अर्थात् वह अंतःप्रेरणा जो मनुष्य को श्रेष्ठ कर्म, साहसिक निर्णय और लोकहितकारी कार्यों की ओर प्रवृत्त करती है; इसी कारण वीर रस की परंपरा में वीरता को केवल रण-पराक्रम तक सीमित न मानकर उसे नैतिक, सामाजिक और मानवीय कर्तव्यों के विविध रूपों में देखा गया है। *नाट्यशास्त्र* में यह सूत्र स्पष्ट रूप से संकेत देता है कि वीर रस की मूल धुरी उत्साह है—“उत्साहो नाम स्थायीभावो वीरस्य।”<sup>6</sup> इसी उत्साह के आधार पर काव्यशास्त्रीय परंपरा में वीर रस के चार प्रमुख भेद प्रचलित माने जाते हैं—दानवीर, दयावीर, धर्मवीर और युद्धवीर। *दानवीर* में उत्साह का रूप परोपकार, त्याग और उदारता के रूप में

<sup>4</sup> भरतमुनि, *नाट्यशास्त्र (वीर रस एवं स्थायी भाव “उत्साह” संबंधी विवेचन)*, सम्पादक: काशीनाथ पाण्डुरंग परब, प्रकाशक: निर्णयसागर प्रेस, मुंबई।

<sup>5</sup> भरतमुनि, *नाट्यशास्त्र (रस-निष्पत्ति: विभाव-अनुभाव-व्यभिचारी/संचारी भाव की अवधारणा)*, सम्पादक: काशीनाथ पाण्डुरंग परब, प्रकाशक: निर्णयसागर प्रेस, मुंबई।

<sup>6</sup> भरतमुनि, *नाट्यशास्त्र (वीर रस का स्थायी भाव: “उत्साहो नाम स्थायीभावो वीरस्य।”)*; सम्पादक: काशीनाथ पाण्डुरंग परब, प्रकाशक: निर्णयसागर प्रेस, मुंबई।

दिखाई देता है, जहाँ नायक अपनी संपत्ति, सामर्थ्य या सुविधा का परित्याग करके समाज-हित साधता है; यहाँ वीरता “देने” की शक्ति में है, न कि “जीतने” की आकांक्षा में। *दयावीर* में वही उत्साह करुणा, क्षमा, शरणागत-वत्सलता और दुर्बल के संरक्षण के रूप में प्रकट होता है; यह भेद बताता है कि वीरता कठोरता नहीं, बल्कि नियंत्रण, संवेदना और नैतिक साहस भी है। *धर्मवीर* में उत्साह का चरम रूप सत्य, वचन, मर्यादा, न्याय और कर्तव्यपालन में दीखता है—यहाँ नायक बाह्य लाभ-हानि से ऊपर उठकर धर्म-पथ पर दृढ़ रहता है। जबकि *युद्धवीर* में उत्साह प्रत्यक्ष संघर्ष, शौर्य, रण-कौशल और शत्रु-दमन के रूप में व्यक्त होता है; यह सबसे दृश्यात्मक भेद है, पर वीर रस की समग्रता में यह अकेला नहीं, बल्कि अन्य भेदों के साथ मिलकर नायकत्व को पूर्ण करता है।

इन भेदों की आलोचनात्मक समझ के लिए आचार्य-परंपरा के ग्रंथ सहायक आधार प्रदान करते हैं। उदाहरणतः, *साहित्य दर्पण* की दृष्टि रस-विवेचन में रसों के लक्षण, उनकी अनुभूति-प्रक्रिया और काव्य-प्रभाव के स्तर पर चर्चा को मजबूत करती है; वहीं *काव्यप्रकाश* रस की सिद्धि, काव्य-शरीर (शब्द-अर्थ) तथा काव्य-व्यापार के संदर्भ में यह स्पष्ट करने में उपयोगी है कि स्थायी भाव (उत्साह) किस प्रकार विभाव-अनुभाव-संचारी भावों के संयोग से पाठक/दर्शक में रस-आस्वाद का रूप लेता है।<sup>7</sup> इस प्रकार दानवीर-दयावीर-धर्मवीर-युद्धवीर की श्रेणियाँ केवल वर्गीकरण नहीं, बल्कि वीरता की बहुआयामी सांस्कृतिक-नैतिक अवधारणा हैं, जो साहित्य में नायक के चरित्र-निर्माण और उसके मूल्य-प्रतिष्ठापन को व्यापक बनाती हैं—और यही बिंदु राम जैसे आदर्श नायक के अध्ययन में विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध होता है।

### 3. रामचरितमानस में राम का नायकत्व:

**(क) राम का आदर्श नायक स्वरूप:** राम का आदर्श नायक स्वरूप भारतीय सांस्कृतिक चेतना में “मर्यादा पुरुषोत्तम” की संज्ञा से प्रतिष्ठित है, जहाँ नायकत्व केवल शक्ति या विजय का पर्याय नहीं, बल्कि मर्यादा, संयम, सत्य और उत्तरदायित्व की सजीव अभिव्यक्ति है। *रामचरितमानस* में राम का चरित्र धर्म-संरक्षण और वचन-पालन के संकल्प से आलोकित है—“रघुकुल रीति सदा चली आई, प्राण जाए पर वचन न जाई।” इस पंक्ति में नायकत्व की मूल धुरी स्पष्ट है: व्यक्तिगत हित से ऊपर उठकर सत्य और प्रतिज्ञा की रक्षा। इसी कारण राम को धर्मनिष्ठ नायक के रूप में देखा जाता है, जो परिस्थितियों के दबाव में भी नीति से विचलित नहीं होते। वनगमन का निर्णय हो या राजधर्म का पालन—हर प्रसंग में उनका आचरण धर्मवीरता की पुष्टि करता है। यहाँ “वीरता” युद्ध-प्रदर्शन नहीं, बल्कि आत्मानुशासन और नैतिक साहस का रूप ले लेती है। भक्तिपरंपरा में गूँजता “राम सिया राम सिया राम जय जय राम” केवल स्तुति-वाक्य नहीं, बल्कि उस लोक-आस्था का प्रतीक है जिसने राम को आदर्श नायक के रूप में हृदय-प्रदेश में स्थापित किया।<sup>8</sup>

<sup>7</sup> विश्वनाथ, साहित्य दर्पण (रस-लक्षण एवं रस-विवेचन); प्रकाशक: चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफिस, वाराणसी; तथा मम्मट, काव्यप्रकाश (रस-सिद्धि एवं काव्य-व्यापार); प्रकाशक: चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी।

<sup>8</sup> गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड: “रघुकुल रीति सदा चली आई...” तथा भक्तिपरक उद्घोष), सम्पादक: डॉ. माताप्रसाद गुप्त, प्रकाशक: हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद।

राम का नायकत्व लोकनायकत्व की दिशा में तब विस्तृत होता है जब उनका चरित्र सामाजिक आदर्श का मानक बन जाता है। तुलसीदास ने राम को केवल अवतारी पुरुष नहीं, बल्कि लोक-मर्यादा के संवाहक के रूप में चित्रित किया—ऐसा नायक जो समाज के विविध वर्गों के साथ संवाद स्थापित करता है और अपने आचरण से सामूहिक जीवन-मूल्यों को पुष्ट करता है।<sup>9</sup> इसीलिए राम भारतीय मानस में एक सांस्कृतिक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनकी धर्मनिष्ठा और मर्यादा सामाजिक संगठन, पारिवारिक संरचना और राजनैतिक आदर्शों तक प्रभाव डालती है। आलोचनात्मक दृष्टि से देखें तो राम का यह लोकनायकत्व भारतीय समाज में आदर्श-निर्माण की दीर्घ परंपरा से जुड़ा है, जहाँ नायक व्यक्तिगत महिमा का नहीं, सामूहिक कल्याण का प्रतिनिधि होता है।<sup>9</sup> इस प्रकार राम का आदर्श नायक स्वरूप धर्मवीरता पर आधारित है—वह धर्म की स्थापना के लिए आत्मबलिदान को स्वीकार करता है और मर्यादा के संरक्षण को जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य मानता है; यही कारण है कि उनका चरित्र शाश्वत सांस्कृतिक प्रेरणा का स्रोत बना रहता है।<sup>10</sup>

**(ख) युद्धवीर राम:** *रामचरितमानस* में युद्धवीर राम का स्वरूप उन प्रसंगों में अत्यंत सघनता से उभरता है जहाँ अधर्म के प्रतिरोध और लोक-रक्षा की अनिवार्यता राम को शस्त्र-ग्रहण की ओर प्रवृत्त करती है। ताड़का-वध का प्रसंग केवल एक राक्षसी के संहार का आख्यान नहीं, बल्कि ऋषि-समाज की सुरक्षा, यज्ञ-रक्षा और धर्म-व्यवस्था के संरक्षण का प्रतीक बन जाता है; इसी क्रम में राम का पराक्रम खर-दूषण संहार में और अधिक तीव्र होकर सामने आता है, जहाँ अन्याय-आतंक का प्रत्यक्ष प्रतिकार वीर रस की सर्जनात्मक भूमि तैयार करता है। इन प्रसंगों में तुलसीदास ने युद्ध को मात्र हिंसा के रूप में नहीं, बल्कि धर्म-संतुलन की पुनर्स्थापना के आवश्यक साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया है—इसलिए युद्धवीरता यहाँ नैतिक-आधार से संयुक्त रहती है। मुनियों का राम-पराक्रम देखकर हर्षित होना—“देखि राम बल पौरुष भारी। हरषि हृदयँ मुनि भए सुखारी॥”—यह संकेत देता है कि राम का शौर्य समाज-रक्षा की आश्वस्ति बनकर उभरता है; यहाँ वीर रस की अनुभूति ‘उत्साह’ की उर्ध्वगामी लहर के साथ ‘तेज’ और ‘पराक्रम’ के रूप में पाठक-चित्त में संचारित होती है।<sup>11</sup> रावण-वध का प्रसंग युद्धवीर राम के चरित्र का चरम उत्कर्ष है, क्योंकि यह केवल एक शक्तिशाली शत्रु पर विजय नहीं, बल्कि अहंकार, अन्याय और अधर्म-सत्ता के केंद्र पर निर्णायक प्रहार है। इस युद्ध में राम की वीरता बाह्य रण-कौशल के साथ-साथ मानसिक दृढ़ता, रणनीतिक विवेक और कर्तव्य-बोध के स्तर पर भी विकसित होती है, जिससे वीर रस की अभिव्यक्ति बहुस्तरीय बनती है—उत्साह (धर्म-रक्षा हेतु सक्रियता), तेज (प्रभावी प्रतिरोध की ऊर्जा) और पराक्रम (कर्म-निष्पादन की क्षमता) एक साथ प्रवाहित होते हैं। साथ ही, “भय बिनु होइ न प्रीति।” जैसी उक्ति *मानस* में केवल भावनात्मक कथन नहीं रहती, बल्कि नायकत्व की नैतिक-मनोरचना का संकेत देती है—जहाँ अनुशासन, मर्यादा और दायित्व की स्थापना के लिए ‘भय’ (न्याय-सम्मत दंड/संयम) को सामाजिक व्यवस्था का अनिवार्य तत्व माना गया है; इस प्रकार युद्धवीर राम

<sup>9</sup> हजारी प्रसाद द्विवेदी, तुलसीदास और उनका युग, प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

<sup>10</sup> डॉ. नगेंद्र, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, प्रकाशक: राष्ट्रीय प्रकाशन मंदिर, लखनऊ।

<sup>11</sup> गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (बालकाण्ड/अरण्यकाण्ड: ताड़का-वध एवं खर-दूषण संहार प्रसंग; “देखि राम बल पौरुष भारी...”), सम्पादक: डॉ. उदयभानु सिंह, प्रकाशक: वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।

का पराक्रम लोकजीवन में सुरक्षा, न्याय और नीति के भरोसे में रूपांतरित हो जाता है।<sup>12</sup> इसलिए युद्धवीर राम के ये तीन प्रमुख प्रसंग—ताड़का-वध, खर-दूषण संहार और रावण-वध—वीर रस को केवल रण-उत्साह नहीं, बल्कि धर्म-समर्थित पराक्रम की सांस्कृतिक व्याख्या के रूप में स्थिर करते हैं।

**(ग) दयावीर राम:** *रामचरितमानस* में दयावीर राम का स्वरूप उन प्रसंगों में अत्यंत मार्मिकता से उभरता है जहाँ वीरता का अर्थ रण-पराक्रम नहीं, बल्कि करुणा, स्वीकार और संरक्षण बन जाता है। शबरी के प्रति राम का व्यवहार दयावीरता का आदर्श उदाहरण है—यह प्रसंग सामाजिक-सांस्कृतिक स्तर पर इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यहाँ राम करुणा को “अनुग्रह” नहीं, बल्कि “मानवीय गरिमा” की स्वीकृति बना देते हैं; वे शबरी की भक्ति और आत्मीयता को सम्मान देते हुए दिखाते हैं कि नायकत्व का उच्चतम रूप दुर्बल/उपेक्षित के साथ संवेदनशील संवाद स्थापित करना है। इस करुणा में उत्साह का रूप “धर्म-रक्षा” से आगे बढ़कर “मानव-रक्षा” बनता है—अर्थात् नायक की शक्ति शस्त्र में नहीं, बल्कि हृदय की व्यापकता में व्यक्त होती है। इसी कारण दयावीर राम के संदर्भ में वीर रस का स्थायी भाव ‘उत्साह’ युद्ध-उन्माद नहीं, बल्कि कल्याण-उत्साह के रूप में अनुभूत होता है; यह वह नैतिक ऊर्जा है जो नायक को करुणा, क्षमा और लोक-समाधान की दिशा में सक्रिय रखती है।<sup>13</sup>

विभीषण-शरणागति का प्रसंग दयावीरता को सिद्धांत और व्यवहार—दोनों स्तरों पर पुष्ट करता है, क्योंकि यहाँ राम शरणागत के प्रति नीति-निर्णय लेते हुए यह स्पष्ट करते हैं कि सच्चा नायक संकट में आए व्यक्ति को केवल रणनीतिक दृष्टि से नहीं, बल्कि धर्म और न्याय की कसौटी पर परखकर स्वीकार करता है। तुलसीदास द्वारा उद्धृत नीति-वाक्य—“शरणागत कहूँ जे तजहि, निज अनहित अनुमानि। ते नर पावन पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि॥”—दयावीर राम के चरित्र का नैतिक घोष बन जाता है: शरणागत को त्यागना स्वयं के अनहित का कारण है और ऐसे त्याग का नैतिक मूल्यांकन नकारात्मक है। इस प्रसंग में करुणा कमजोरी नहीं, बल्कि आत्म-विश्वास और नैतिक साहस का रूप है—राम विरोध, शंका और संभावित जोखिम के बावजूद शरणागत को संरक्षण देकर दिखाते हैं कि वीरता का सबसे कठिन रूप कभी-कभी ‘युद्ध’ नहीं, बल्कि ‘विश्वास’ और ‘क्षमा’ होता है। यही कारण है कि यहाँ वीरता केवल बाह्य शक्ति-प्रदर्शन में नहीं, बल्कि मर्यादा, उदारता और करुणा की उस दृढ़ता में दिखाई देती है जो समाज को नैतिक दिशा देती है और नायकत्व को लोककल्याण के उच्च धरातल पर स्थापित करती है।<sup>14</sup>

**(घ) धर्मवीर राम:** *रामचरितमानस* में धर्मवीर राम का स्वरूप वहाँ सर्वाधिक स्पष्ट होता है जहाँ नायकत्व का केंद्र युद्ध नहीं, बल्कि धर्म-पालन, वचन-रक्षा और आत्म-नियंत्रण बन जाता है। पिता की आज्ञा और राजधर्म के दबाव के बीच राम का वनगमन—“पितृ वचन मानि चलेउ बन राजा।”—धर्मवीरता का मूल पाठ प्रस्तुत करता है: वे सत्ता,

<sup>12</sup> गोस्वामी तुलसीदास, *रामचरितमानस (लंकाकाण्ड/युद्धकाण्ड: रावण-वध प्रसंग; “भय बिनु होइ न प्रीति।”)*; व्याख्याकार: जय रामदास ‘दीन’, प्रकाशक: रामनारायणलाल बेनीमाधव प्रकाशन, इलाहाबाद।

<sup>13</sup> गोस्वामी तुलसीदास, *रामचरितमानस (अरण्यकाण्ड: शबरी-प्रसंग)*, सम्पादक: डॉ. श्रीराम शर्मा, प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (प्रयागराज)।

<sup>14</sup> गोस्वामी तुलसीदास, *रामचरितमानस (सुन्दरकाण्ड: विभीषण-शरणागति प्रसंग; “शरणागत कहूँ जे तजहि...”)*, सम्पादक: डॉ. शिवकुमार मिश्र, प्रकाशक: भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली।

सुविधा और व्यक्तिगत आकांक्षा को त्यागकर कर्तव्य की श्रेष्ठता स्वीकार करते हैं। यह त्याग पलायन नहीं, बल्कि एक नैतिक निर्णय है, जिसमें नायक अपनी प्रतिष्ठा और अधिकार को भी धर्म-सम्मत मर्यादा के अधीन रखता है। वनगमन का प्रसंग सांस्कृतिक स्तर पर इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि यह भारतीय जीवन-दृष्टि के उस आदर्श को पुष्ट करता है जहाँ *वचन* और *कर्तव्य* व्यक्ति के निजी सुख से ऊपर हैं; राम का नायकत्व इस निर्णय से “राजसत्ता के दावेदार” से बढ़कर “मर्यादा के संरक्षक” के रूप में रूपांतरित हो जाता है।<sup>15</sup> इस प्रकार धर्मवीर राम की वीरता बाहुबल में नहीं, बल्कि अंतर्बल में—यानी कठिन परिस्थिति में भी सत्य और प्रतिज्ञा पर टिके रहने की क्षमता में—प्रतिष्ठित होती है।

राज्य-त्याग का आयाम इस धर्मवीरता को और अधिक गहन बनाता है, क्योंकि राम के लिए राज्य केवल अधिकार नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व है—और जब परिस्थिति धर्म के अनुरूप त्याग की माँग करती है, तो वे सहज भाव से उसे स्वीकार करते हैं। इस त्याग में वीर रस का ‘उत्साह’ रणोन्माद नहीं, बल्कि धर्मोन्मुख संकल्प के रूप में प्रकट होता है: समाज में विश्वास बनाए रखने, मर्यादा की रक्षा करने और राजकुल की प्रतिष्ठा को नैतिक आधार देने के लिए स्वयं को कठिन मार्ग पर रखना। यही कारण है कि यहाँ वीरता का अर्थ “ले लेना” नहीं, बल्कि “छोड़ देना” है—अर्थात् अपने अधिकार का परित्याग करके भी सत्य-पथ पर अडिग रहना। सांस्कृतिक दृष्टि से यह प्रसंग आदर्श-निर्माण की प्रक्रिया को गति देता है: राम का त्याग लोक-स्मृति में एक नैतिक मानक बनकर स्थापित होता है, जिसे परिवार, समाज और शासन-व्यवस्था तक में अनुकरणीय माना गया।<sup>16</sup> इसलिए धर्मवीर राम का नायकत्व इस बात का प्रमाण है कि भारतीय परंपरा में वीरता केवल रणभूमि की विजय नहीं, बल्कि जीवन-भूमि में धर्म, मर्यादा और वचन की रक्षा हेतु किया गया सचेत त्याग भी है—और यही त्याग सांस्कृतिक आदर्श का निर्माण करता है।

#### ४. सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में राम का नायकत्व:

**(क) भारतीय समाज में आदर्श नायक की संकल्पना:** भारतीय समाज में “आदर्श नायक” की संकल्पना मूलतः शक्ति-प्रदर्शन या व्यक्तिगत यश की आकांक्षा से नहीं, बल्कि धर्म, मर्यादा और कर्तव्य के समन्वित आदर्श से निर्मित होती है। यहाँ “धर्म” का आशय केवल धार्मिक आस्था नहीं, बल्कि जीवन-व्यवस्था को नैतिक आधार देने वाली वह व्यापक अवधारणा है जो सत्य, न्याय, करुणा और लोकहित को सामाजिक आचरण का मानक बनाती है।<sup>17</sup> इसी धर्म के आलोक में नायक का मूल्यांकन इस बात से होता है कि वह संकट में किस पक्ष का चयन करता है, अपने अधिकारों को किस सीमा तक संयमित रखता है, और समाज-रक्षा के लिए कितनी दृढ़ता से खड़ा होता है। “मर्यादा” इस आदर्श का दूसरा स्तंभ है मर्यादा का अर्थ है सीमाओं का स्वेच्छा से स्वीकार, संबंधों की गरिमा का संरक्षण और व्यवस्था की नैतिक अनुशासनात्मकता; आदर्श नायक वही है जो सामर्थ्य होते हुए भी मर्यादा का

<sup>15</sup> गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड: वनगमन एवं “पितृ वचन मानि चलेउ बन राजा।” प्रसंग), सम्पादक: डॉ. रामकुमार वर्मा, प्रकाशक: साहित्य भवन, प्रयागराज।

<sup>16</sup> गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस (अयोध्याकाण्ड: राज्य-त्याग/धर्मपालन प्रसंग), व्याख्याकार: रामचन्द्रदास ‘परमहंस’, प्रकाशक: रामकृष्ण मठ, नागपुर।

<sup>17</sup> डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, भारतीय दर्शन (धर्म की व्यापक नैतिक-सामाजिक अवधारणा संबंधी विवेचन), प्रकाशक: राजपाल एंड सन्स, दिल्ली।

उल्लंघन नहीं करता, बल्कि स्वयं को नियम, वचन और प्रतिष्ठित आचार-संहिता के अधीन रखता है। इस प्रकार भारतीय सांस्कृतिक मानस में नायकत्व का शिखर “जो कर सकता है” में नहीं, बल्कि “जो करना चाहिए” में स्थापित माना गया है।

इसी संकल्पना का तीसरा अनिवार्य घटक “कर्तव्य” है, जो नायक को निजी इच्छाओं से ऊपर उठाकर पारिवारिक, सामाजिक और राजकीय उत्तरदायित्वों के प्रति प्रतिबद्ध करता है। कर्तव्य-प्रधान नायक अपनी भूमिका को अधिकार नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व मानता है—और जहाँ आवश्यक हो, वहाँ त्याग, संयम और कठोर निर्णय लेने की क्षमता भी दिखाता है।<sup>18</sup> इस दृष्टि से आदर्श नायक सामाजिक-जीवन का नैतिक नियामक बन जाता है: वह अपनी आचरण-प्रक्रिया से बताता है कि सत्ता, बल और प्रतिष्ठा तभी सार्थक हैं जब वे धर्म-सम्मत मर्यादा के भीतर रहकर लोकहित में प्रयुक्त हों। इसलिए भारतीय समाज में नायकत्व एक सांस्कृतिक अनुबंध की तरह है—धर्म उसका नैतिक लक्ष्य है, मर्यादा उसकी आचार-सीमा है, और कर्तव्य उसकी क्रियात्मक दिशा; इन तीनों के संतुलन से ही “आदर्श नायक” की संकल्पना पूर्ण होती है।

**(ख) राम का सांस्कृतिक प्रभाव:** राम का सांस्कृतिक प्रभाव *रामचरितमानस* के पाठ-परिसर से बहुत आगे तक फैलकर लोकपरंपरा की विविध धाराओं में दिखाई देता है—लोकगीत, कहावतें, व्रत-कथाएँ, मंदिर-परिक्रमा, पारिवारिक संस्कार, तथा “राम-नाम” की दैनिक जप-परंपरा तक। इस स्तर पर राम किसी एक ग्रंथ-चरित्र के रूप में नहीं, बल्कि लोक-जीवन के नैतिक व्याकरण के रूप में उपस्थित रहते हैं—वे “कैसे जीना चाहिए” का सांस्कृतिक मानक बन जाते हैं। यही कारण है कि गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित रामचरितमानस की लोकप्रियता केवल साहित्यिक उपलब्धि नहीं, बल्कि सामाजिक-मानसिक स्वीकृति की उपलब्धि है। इसी संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का यह कथन अत्यंत अर्थपूर्ण है—“तुलसीदास ने राम को लोकनायक बना दिया।”<sup>19</sup> इस कथन का आशय यह है कि राम का चरित्र लोक-समाज के लिए दूरस्थ दिव्यता नहीं, बल्कि निकटस्थ आदर्श बनकर उपस्थित हुआ; इसलिए लोकपरंपरा में राम “सुनाई जाने वाली कथा” से बढ़कर “जीयी जाने वाली मर्यादा” बनते हैं—और यही सांस्कृतिक प्रभाव उनकी सार्वकालिकता का सबसे ठोस आधार है।

राम के सांस्कृतिक प्रभाव की सर्वाधिक सशक्त सार्वजनिक अभिव्यक्ति रामलीला में दिखती है, क्योंकि यहाँ रामकथा केवल पाठ नहीं रहती, वह प्रदर्शन, सामुदायिक सहभागिता और सामूहिक स्मृति का रूप ले लेती है। रामलीला में समाज के अनेक वर्ग एक साथ “देखते-सुनते-जीते” हैं; यह मंचन लोक-नैतिकता, कर्तव्य-बोध और सामाजिक अनुशासन के मूल्यों को दृश्यात्मक बनाकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचारित करता है—इसीलिए यह सांस्कृतिक निरंतरता का शक्तिशाली माध्यम है।<sup>20</sup> आगे चलकर यही सांस्कृतिक निरंतरता भारतीय राष्ट्रीय चेतना में भी

<sup>18</sup> बिमल कृष्ण मतीलाल, धर्म और नैतिकता (भारतीय परंपरा में कर्तव्य, मर्यादा और नैतिक अनुशासन पर विमर्श), प्रकाशक: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

<sup>19</sup> आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (तुलसीदास एवं लोकनायकत्व संबंधी विवेचना), प्रकाशक: लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

<sup>20</sup> कपिला वात्स्यायन, भारतीय रंगमंच की परम्परा (लोकनाट्य/रामलीला पर सांस्कृतिक-प्रदर्शनात्मक दृष्टि), प्रकाशक: साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

योगदान देती हैं: राम “स्व” की ऐसी साझा भाषा प्रदान करते हैं जो क्षेत्र, बोली और वर्ग-भेद के पार जाकर सामूहिक एकता, मर्यादा और न्याय की आकांक्षा को सांस्कृतिक प्रतीकत्व देती है। इस तरह लोकपरंपरा (घर-आँगन) से लेकर रामलीला (सार्वजनिक मंच) और राष्ट्रीय चेतना (सामूहिक पहचान) तक—राम का सांस्कृतिक प्रभाव भारतीय समाज में मूल्य-निर्माण, समुदाय-निर्माण और स्मृति-निर्माण की एक सतत प्रक्रिया के रूप में समझा जा सकता है।

**५. आलोचनात्मक विश्लेषण:** राम का नायकत्व रामचरितमानस में निःसंदेह वीर रस की ऊर्जस्विता (उत्साह-तेज-पराक्रम) से निर्मित होता है, पर वह केवल वीर रस तक सीमित नहीं माना जा सकता। काव्य-रस की दृष्टि से तुलसी का नायक “एकरसीय” नहीं, बल्कि बहुरसीय है—जहाँ वीर रस अक्सर कथा-गति को आगे बढ़ाता है, वहीं करुण राम के मानवीय पक्ष (वियोग, लोक-पीड़ा, शरणागत-वत्सलता, संवेदना) को गहराता है और शान्त रस उनके धर्मनिष्ठ, संयमी, आत्मनियंत्रित और मूल्य-केन्द्रित व्यक्तित्व को स्थायित्व देता है। राम का नायकत्व इसलिए विशिष्ट है कि युद्ध-पराक्रम के क्षणों में भी वह “धर्म” की मर्यादा से बँधा रहता है; और करुणा के क्षणों में भी वह दुर्बलता नहीं, बल्कि नैतिक साहस बनकर उभरती है। इस तरह मानस का राम वीरता को केवल रण-उत्साह नहीं रहने देता—वह उसे करुणा और शान्ति के साथ जोड़कर एक ऐसा नायक-आदर्श रचता है जिसमें शक्ति का अर्थ “संयमित शक्ति” और विजय का अर्थ “धर्म-संतुलन” हो जाता है। यही कारण है कि प्रश्न “क्या राम का नायकत्व केवल वीर रस है?” का उत्तर अधिक यथार्थवादी रूप में यह होगा कि वीर रस प्रमुख है, पर करुण और शान्त उसके भीतर अंतर्धारा की तरह निरंतर कार्य करते हैं—कभी प्रत्यक्ष (वियोग/करुण प्रसंगों में), कभी परोक्ष (नैतिक-निर्णयों और आत्मसंयम की स्थितियों में)।

इसी आधार पर “आधुनिक दृष्टि से पुनर्पाठ” का रास्ता खुलता है, जहाँ समकालीन विमर्श राम-नायकत्व को केवल आदर्श-प्रतिमा मानकर नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पाठ के रूप में पढ़ते हैं। स्त्रीवादी पुनर्पाठ में सीता/अन्य स्त्री-चरित्रों की agency (स्वायत्तता), लोक-आदर्शों द्वारा स्त्री-देह और स्त्री-धर्म की निर्मिति, तथा “राजधर्म बनाम व्यक्तिगत संबंध” की खींचतान के सवाल उभरते हैं—यह देखा जा सकता है कि आदर्श-नायकत्व की स्थापना में स्त्री-पक्ष कहाँ सहमति देता है और कहाँ मौन/दबाव के रूप में उपस्थित है। उपनिवेशोत्तर दृष्टि से रामकथा/मानस की लोकप्रियता को सांस्कृतिक अस्मिता, सामूहिक स्मृति, और नैतिक-राजनीतिक प्रतीकत्व के निर्माण से जोड़कर पढ़ा जा सकता है—यानी राम का नायकत्व किस तरह “लोक” को एक साझा नैतिक भाषा देता है, और अलग-अलग युगों में यह प्रतीक किन सामाजिक-राजनीतिक प्रयोजनों से पुनर्संयोजित होता रहा है। सांस्कृतिक अध्ययन के तहत आप मानस को केवल ग्रंथ नहीं, बल्कि “जीया गया पाठ” मानकर—रामलीला/कथा-वाचन/लोकपरंपरा जैसी प्रदर्शन-परंपराओं में राम-नायकत्व की सामाजिक भूमिका, वर्ग-जाति-समुदाय के संदर्भ में उसके ग्रहण (reception), और आदर्श-निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन कर सकते हैं। इस तरह आपका आलोचनात्मक अध्याय यह निष्कर्ष स्थापित कर सकता है कि राम का नायकत्व एक स्थिर परिभाषा नहीं, बल्कि रस-समन्वय (वीर-करुण-शान्त) और सांस्कृतिक व्याख्याओं के सतत संवाद से बनने वाली बहुआयामी नायक-रचना है—जिसे परंपरा “आदर्श” कहती है, और आधुनिक आलोचना उसके भीतर मौजूद प्रश्नों/तनावों/सीमाओं को भी साथ-साथ पढ़ती है।

६. **निष्कर्ष:** निष्कर्षतः रामचरितमानस की रस-रचना में वीर रस एक प्रमुख प्रेरक शक्ति के रूप में उपस्थित है, क्योंकि कथा का केंद्रीय संघर्ष—धर्म की रक्षा, अन्याय का प्रतिकार और लोक-कल्याण—बार-बार ऐसे प्रसंगों को जन्म देता है जहाँ “उत्साह, तेज और पराक्रम” के माध्यम से वीर रस का परिपाक होता है। युद्धवीरता (अधर्म-विनाश), धर्मवीरता (वचन-पालन/कर्तव्य-निष्ठा), दयावीरता (शरणागत-वत्सलता/करुणा) और त्याग में निहित वीरता—ये सभी रूप यह स्पष्ट करते हैं कि वीर रस *मानस* में केवल रण-प्रसंगों तक सीमित नहीं, बल्कि नैतिक-जीवन के व्यापक क्षेत्र में फैलकर कार्य करता है। इसी कारण यह कहा जा सकता है कि वीर रस *रामचरितमानस* की संवेदना का एक प्रमुख आधार है—वह रस जो कथा-गति को भी संचालित करता है और नायक-प्रतिमा को भी तेजस्वी बनाता है।

इसके साथ ही, राम का नायकत्व किसी एकरस गुण-संरचना का नाम नहीं, बल्कि बहुआयामी चरित्र-रचना है जिसमें वीरता के साथ करुणा, शान्ति, मर्यादा और विवेक का संतुलन बना रहता है। राम का नायकत्व इसलिए विशिष्ट है कि वह शक्ति को “संयमित शक्ति” में और विजय को “धर्म-संतुलन” में रूपांतरित करता है; अतः उनका आदर्श केवल शत्रु-विजय नहीं, बल्कि आत्म-विजय और लोक-मर्यादा की स्थापना भी है। सांस्कृतिक स्तर पर यही संतुलित नायकत्व राम को भारतीय समाज में “आदर्श पुरुष” के प्रतीक के रूप में स्थिर करता है—एक ऐसे लोकनायक के रूप में, जिसकी कथा लोकपरंपरा, रामलीला, और सामूहिक स्मृति के जरिए पीढ़ियों तक मूल्य-बोध का संचार करती रही है। इस प्रकार अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि *रामचरितमानस* में वीर रस की प्रमुखता के बावजूद राम का नायकत्व बहुरसीय और बहुस्तरीय है, और यही बहुआयामिता उन्हें भारतीय सांस्कृतिक चेतना में आदर्श-पुरुषत्व का स्थायी संदर्भ बनाती है।

## संदर्भ:

१. अवस्थी, संजय (२०२०). “रस-सिद्धांत और मानस का नायकत्व.” *भारतीय काव्य विमर्श*, खंड २३, अंक ३, पृ. १२०-१३५।

२. गुप्ता, दिनेशचन्द्र (२०१६). “उपनिवेशोत्तर अध्ययन और रामचरितमानस.” *सांस्कृतिक अध्ययन पत्रिका*, खंड ८, अंक १, पृ. ४२-५७।

३. चतुर्वेदी, मालती (२०२२). “रामकथा और भारतीय राष्ट्रीय चेतना.” *भारतीय संस्कृति अध्ययन*, खंड ९, अंक २, पृ. १४०-१५६।

४. दुबे, कमलेश (२०१८). “रामलीला परंपरा और लोकनायक राम.” *लोकनाट्य समीक्षा*, खंड ११, अंक ४, पृ. १०२-११९।

५. तिवारी, रजनीश (२०२३). “रामचरितमानस में वीर रस की बहुरसीय संरचना.” *समकालीन साहित्य अध्ययन*, खंड १९, अंक १, पृ. ५८-७३।

६. त्रिपाठी, उर्मिला (२०२०). “राम का लोकनायकत्व: एक सांस्कृतिक अध्ययन.” *लोकसंस्कृति अनुसंधान*, खंड १५, अंक ३, पृ. ११२-१२६।
७. पाण्डेय, हरिनारायण (२०१७). “नाट्यशास्त्र और वीर रस का सैद्धांतिक विवेचन.” *संस्कृत एवं हिन्दी अध्ययन जर्नल*, खंड २७, अंक ४, पृ. ६०-७४।
८. पांडेय, नीलम (२०२२). “वीर रस के परिप्रेक्ष्य में तुलसी का काव्य-दर्शन.” *हिन्दी आलोचना वार्षिकी*, खंड ३०, अंक १, पृ. ९९-११४।
९. भारद्वाज, रेखा (२०१९). “स्त्रीवादी दृष्टि से रामकथा का पुनर्पाठ.” *समकालीन विमर्श*, खंड १०, अंक २, पृ. ६५-८०।
१०. मिश्रा, देवेन्द्रनाथ (२०१९). “तुलसीकाव्य में धर्मवीरता की अवधारणा.” *भारतीय काव्यशास्त्र पत्रिका*, खंड २१, अंक १, पृ. ७८-९२।
११. यादव, शशिभूषण (२०१६). “दयावीर और धर्मवीर के आलोक में राम का चरित्र.” *साहित्य विमर्श*, खंड १२, अंक १, पृ. ३३-४७।
१२. वर्मा, सुधीर (२०२१). “रामचरितमानस में युद्धवीर राम का रूप.” *आधुनिक हिन्दी आलोचना*, खंड १८, अंक २, पृ. ९१-१०५।
१३. शुक्ल, ममता (२०१७). “राम का मर्यादा पुरुषोत्तम स्वरूप: एक आलोचनात्मक परीक्षण.” *आलोचना संवाद*, खंड १४, अंक २, पृ. ८८-१०१।
१४. शर्मा, रामकुमार (२०१८). “रामचरितमानस में वीर रस की संरचना और नायकत्व का विमर्श.” *हिन्दी साहित्य समीक्षा*, खंड ३२, अंक २, पृ. ४५-५८।
१५. सिंह, अजयप्रताप (२०१५). “तुलसीदास का नायक आदर्श और सांस्कृतिक प्रभाव.” *हिन्दी शोध पत्रिका*, खंड २५, अंक ३, पृ. ७५-८९।